CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरभङ्गम्

महामहोपाध्यायस्य सनातनकवेः
रेवाप्रसाददिवेदिनः
काश्यपस्य

प्रकाशकम्
कालिदाससंस्थानम्
वाराणसी—५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श र भ ङ्ग म्

(अध्यात्मरहस्यकाव्यम्)

महामहोपाध्यायस्य सनातनकवेः
रेवाप्रसादद्विवेदिनः
काश्यपस्य

कविवर्येभ्यः पं० श्रीरेवाप्रसाद-
महोदयेभ्यः सप्रणामसुहृद्भा
—स० द्विवेदी
२१।३।९०

अनुवादः
द्विवेदिनो डा० सदाशिवकुमारस्य

प्रकाशकम्
कालिदाससंस्थानम्
वाराणसी—५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ŚARABHAṄGAM : A Poem of 108 Verses on mystecism

शरभङ्गम् : अध्यात्मरहस्यकाव्यम्

© सर्वाधिकार सुरक्षित

लेखक: मूलस्य : सनातनकविः रेवाप्रसादो द्विवेदी काश्यपः
अनुवादस्य: डॉ० सदाशिवकुमारो द्विवेदी

प्रकाशनवर्षम् २००१ ई०

प्रकाशकम् - कालिदाससंस्थानम्, २८ महामनापुरी, वाराणसी-५
दूरभाष # ३१६८८२

मूल्यम् रु० ३५.००

मुद्रक - कम्प्यूटर प्वाइण्ट,
शिवशक्ति काम्पलेक्स, लंका,
वाराणसी - ५

कालिदाससंस्थानस्य प्रकाशनानि :

१. उत्तरसीताचरितम् - महाकाव्यम् १० सर्गाः
२. स्वातन्त्र्यसंभवम् - महाकाव्यम् ३३ सर्गाः
३. शकटारम् १२२ पद्यानि
४. मतान्तरम् १११ पद्यानि
५. शतपत्रम् ११६ पद्यानि
६. प्रमथः ९ काव्यानि
७. शरभङ्गम् १०८ पद्यानि
८. शिवमहिम्नःस्तोत्रम् संशोधितमूल, अनुवाद
९. सत्यनारायणव्रतकथा संशोधितमूल, अनुवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रणतिः

शरभङ्गमयन्नसौ तपोभिः
शिवनाम्ना प्रथितं महान् महर्षिः।
इह सूर्पणखां स्वदण्डकायां
विनिनीषत्यभिरामरामकामे ।। १ ।।

शरभङ्गमहर्षिवृत्तमेतद्
प्रथितं किञ्चन 'चित्रकूट'-खण्डे।
स्वयमादिकवेः कवित्वसौध-
शिखरे विश्वकविष्वपूर्वताढ्ये।। २ ।।

तदिदं सुरभारतीसपर्या–
व्रतिना हन्त सनातनेन भूयः।
ग्रथितं विधिना नवेन भूयाद्
विदुषां भारतवेदिनां प्रहृष्ट्यै।। ३ ।।

सनातनस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरोवाक्

Indian philosophy does not reject the material phenomena though believes in the absolute entity. How is it possible? The reply is well drafted here in the poem.

भारतीयं दर्शनं परमार्थे विश्वसिति, किन्तु भौतिकमिदं विश्वं न तिरस्करोति। किमिवैतत् संभवीति प्रश्ने काव्यमिदं सुसदृशमुत्तरम्।

एतस्य प्रकाशनाय प्रणमामि मातृचरणान्, भ्रातृपादॉश्च दत्तसर्वविधसाहाय्यान् श्रीद्रुपदकुमारीति डॉ० सर्वज्ञ इति च विदितान्।

दिनांक १.१.२००१

सदाशिवः

मानदः सचिवः, कालिदाससंस्थानस्य

वाराणसेयस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरभङ्गम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

सनातनकवि-श्रीरेवाप्रसादद्विवेदि-विरचितं

शरभङ्गम्

अयि दण्डककानन! त्वदीया
तुलना नास्ति चराचरप्रपञ्चे।
वसतिं विदधे स यत्र कोऽपि
शरभङ्गः प्रथमो महामुनीनाम्॥ १ ॥

हे दण्डकवन! चराचरात्मक इस प्रपञ्च में तेरी तुलना नहीं जिसमें सर्वोत्कृष्ट मुनि शरभङ्ग ने भी निवास किया ॥ १ ॥

अयमस्ति जिजीविषावधूट्या
निखिलो मानुषलोक इद्धबुद्धिः।
अयमस्ति जिघांसया पिशाच्या
विनिगीर्णश्च जिगीषयेव कामी॥ २ ॥

इधर तो यह संपूर्ण मनुष्य लोक जिजीविषा से प्रदीप्त है और उधर जिघांसारूपी पिशाची जिगीषा के ही समान इसे निगले जा रही है ॥ २ ॥

अयमिच्छति पारमेष्ठ्यमस्यां
मृदि यस्यां विपदेव निर्व्यलीका।
इह यत् समुदेति शैलशीर्षे
सविधे जाग्रति हन्त तस्य खाताः॥ ३ ॥

देखो तो इसे, यह इस पूरी मिट्टी पर पारमेष्ठ्य चाह रहा है, जिस पर मृत्यु ही सत्य है। यहाँ तो स्थिति यह है कि जो शैल शृङ्ग पर खड़ा होता है उसके पास उपस्थित रहती है बड़ी बड़ी खाइयाँ ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भृगवो मम पातमात्रमुच्चैः
पदमास्थाय विजृम्भमाणमूर्त्तेः।
तटमन्तिमकोटिकं रसाया-
स्तलतो व्योमनि मूर्च्छितं तदेतत्।। ४ ।।

सर्वोच्च पद पाकर मैं जो फैलता गया उसके गिरने का ही तो नाम है भृगुपात। यह भूमितल से आकाश की अन्तिम ऊँचाई तक फैला हुआ है ।। ४ ।।

भृगुता त्वियमेव यद् विमानं
गगने गत्वरमात्रता-सहायम्।
स्थिरतां न हि वेद यन्नवा यत्
प्रतिगन्तुं क्रमते न वा विरामम्।। ५ ।।

भृगुता तो यही है कि वायुयान जानता हो आकाश में केवल उड़ना, न जानता हो स्थिर रहना, न लौटना और न रुकना ।। ५ ।।

भृगवोऽत्र समेऽप्यमी तंमिस्रां
निबिडां बिभ्रति काञ्चिदुत्प्रकाशाम्।
इह दर्शनमस्ति सावकाशं
यदि, तत्कौशिकमात्रनेत्रनिष्ठम्।। ६ ।।

जितने भी भृगु हैं वे सभी लिए हुए हैं गहन तमिस्रा जिसने उखाड़ फेंका है प्रकाश को। यदि इसमें कोई दर्शन है तो केवल उल्लू के नेत्र का ।। ६ ।।

इदमेव रसातलाभिधानं
पिटकं किञ्चन यत्र नागराजाः।
गरलेन सनातनेन यात्रां
परितः पूरयितुं भवन्ति सिद्धाः।। ७ ।।

यही है वह रसातल-नामक एक ऐसा गड्ढा जिसमें बड़े बड़े नागराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सदैव अपनी यात्रा पूरी करते रहना चाहते हैं एक सनातन विष से। वे इस कार्य में सिद्ध हैं ।। ७ ।।

इह किं न हि वर्त्तते सुराणा-
मपि लोकादिह चाकचक्यमुच्चैः।
इह यत् खलु सौभगं तदीये
वपुषि त्वङ्गति चाक्षुषः समाधिः।। ८ ।।

यहाँ क्या नहीं है? सुरों के लिए स्वर्ग से भी अधिक है चाकचिक्य। यहाँ जो सुन्दरता है उसमें दिखाई दे रही है चाक्षुष समाधि ।। ८ ।।

इह या खलु पादयुग्मचारी
ललिताङ्गीमनु तामियं वसूनाम्।
स्वनति क्वणति प्ररौति नान्दी
प्रसभं धावति तत्र मङ्गलं नुः।। ९ ।।

यहाँ जो दो पैरों की चारी है वह बड़ी ही ललित है। उसके अनुसरण में देखें वसुओं (धन और अष्ट वसु) का नगाड़ा गनगना रहा है और वही है मनुष्यलोक का उत्तम मङ्गल। {नाटक का आरम्भ नान्दीवादन से होता है। नान्दा यानी नगाडा।} ।। ९ ।।

न हि यत्र विमर्शनं न गर्भो
नियताप्तिर्नियतायते फलेषु।
अत एव न यत्र विप्रलम्भो
न च कारुण्यकथापि काप्यपूर्वा।। १०।।

न जिसमें विमर्शन (विमर्श सन्धि भी) है और न गर्भ। किन्तु फलों की निश्चिताप्ति सुनिश्चित है। इसीलिए जहाँ न विप्रलम्भ है और न कोई (रामायण जैसी) कारुण्य की अपूर्व कथा ।। १० ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभवस्य विभूतिभिः सहस्रा-
धिकतायां प्लवमानविग्रहाभिः।
उपचीयत एव विग्रहोऽस्मिन्
यदिदं नाकसहस्रकेऽपि नाऽऽप्यम्।। ११ ।।

यहाँ वैभव की विभूतियाँ अनगिनत हैं। वे चहुँओर तैर रही हैं और बढ़ती ही जा रही हैं। ऐसी समृद्धि तो एक नहीं, एक हजार स्वर्ग में प्राप्त नहीं की जा सकतीं ।। ११ ।।

तमसामिह सान्निपातिकेऽन्तः-
पुरिकाणां मसृणे निशान्तरत्ने।
भुजगा रसयन्ति कान् न भोगान्
न नभोगानपि ये स्पृशन्ति दृष्ट्या।। १२ ।।

यहाँ सभी प्रकार के तम इकट्ठे हैं। इनसे भरा हुआ और मसृण जो अन्तःपुर की सुन्दरियों का उत्तम शयनागार (निशान्त) है इसमें भुजग (विट और सर्प) कौन-कौन सा भोग नहीं करते, जो देवताओं को देखने को भी सुलभ नहीं हो पाते ।। १२ ।।

अरसा जरसा रसा वराकी
तलमस्यास्तु सदैव निर्जराङ्गम्।
तम इत्यभिधीयमानमेत-
दहहा किं न महत्तमं महश्च।। १३ ।।

यह बेचारी भूमि कहलाती है रसा, पर इसमें रस है कहाँ ? यह तो रसा नहीं अरसा है। क्यों? इसलिए कि इस पर जरा भी जो है। और इसी (रसा) का जो तल है उसके शरीर में जरा कभी भी नहीं आती। इस कारण यह जो 'तम' नाम से पुकारी जाने वाली वस्तु है यह यहाँ महत्तम महस् (प्रकाश) भी है ।। १३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इह कुत्रचनास्ति दीर्घदीर्घं
चलितं किञ्चन सत्रमृष्यशृङ्गम्।
शतशः खलु यत्र हव्यकव्ये
प्रदिशन्तो दधते कृतित्वमुच्चैः।। १४ ।।

इसी (पाताल) लोक में चल रहा है कहीं कोई एक दीर्घ दीर्घ सत्र, जिसका नाम है ऋष्यशृङ्ग (हरिण का सींग और महर्षि ऋष्यशृङ्ग या शृङ्गी ऋषि) जिसमें सैकड़ों होता हव्य (देवोपयोगी हविष्य) और कव्य (पितरों के लिए उपयोगी हविष्य) दोनों की आहुतियाँ दे रहे हैं और अच्छी तरह सफल दिखाई दे रहे हैं ।। १४ ।।

क्वचिदत्र हि कामधेनुरूधो
निजमुद्वर्त्तयितुं प्रचेष्टमाना।
श्वसनाशनवंशगां बुभुक्षां
क्षणुते क्षीर-बलाहक-प्रवर्षैः।। १५ ।।

यहीं कहीं कामधेनु भी अपना ऊधस् (ऐंन) उछाल रही है और दूध के मेघ बरसा बरसा कर सर्पों के वंश की भूख शान्त कर रही है ।। १५ ।।

इत एव स शेष इत्यभिख्यः
परिशेषो निखिलस्य सर्जनस्य।
प्रतितिष्ठति कुत्रचित् सहस्रं
फणरत्नानि निधाय शीर्षशेषे।। १६ ।।

यहीं है निखिल सृष्टिचक्र का परिशेष शेष {नाग} प्रतिष्ठित उसके सिर के ऊपर लिए हुए है वह अनन्त अनन्त फन ।। १६ ।।

हरये वटुवामनत्वदीक्षा-
गुरुतायां परकं न संविदानः।
असुरः स बलिश्च यत्र नित्यं
हरिमालोक्य जहाति रात्रिनिद्राम्।। १७ ।।

हरि को वामन बनने की दीक्षा देने वाला अद्वितीय और अकेला गुरु बलि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामक असुर भी यहीं हरि का दर्शन करके सोता और हरि के दर्शन से ही जागता है {महादानी बलि को वामन ने छल लिया तो प्रसन्न वामन से उसने वर प्राप्त किया कि वह हरि का दर्शन करके सोएगा और हरि का दर्शन करके ही जागेगा। भगवान् उपस्थित रहते हैं बलि के यहाँ दोनों बार नियमत:} ।। १७ ।।

अहहा तदिदं रसातलाख्यं
त्रिदिवं कां नु जिजीविषां न धत्ते।
इह यस्य निपातनास्ति तस्मै
नियतिर्नूनमुदारतां हि धत्ते।। १८ ।।

आहाहा। वह यह रसातल पाताल नहीं, स्वर्ग है। इसमें कौन-कौन सी जिजीविषा नहीं? यहाँ जिसे ढकेला जाता है निश्चित ही उसके लिए नियति अनुकूल ही बनी मिलती है ।। १८ ।।

न हि काचन दृश्यतेऽत्र हानि:
शरभङ्ग: परमेष नाऽत्र कामी।।
स हि रज्यति कुत्रचित् परत्र
न जिगीषा न जिजीविषा च यत्र।। १९ ।।

यहाँ हानि भी किसी भी प्रकार की नहीं दिखाई दे रही, परन्तु ये शरभङ्ग ऐसे हैं कि इसके लिए तनिक भी इच्छुक नहीं। वे अनुरक्त हैं जहाँ न होती जिगीषा (जीतने की इच्छा) और न जिजीविषा (जीने/भोगने की इच्छा) ।। १९ ।।

इदमेकमिदं च सद्वितीयं
'तदिदं' -कार-पदद्वयीपदं यत्।
तदुपेक्ष्य यदृच्छया निरीह:
शरभङ्ग: खलु कस्तमो महो वा।। २० ।।

'यह है एक (अकेला)' और 'यह है सद्वितीय (सदा दूसरे के साथ)'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार जो 'तत्' और 'इदं' ये दो पद हैं इन दोनों के विषय की उपेक्षा कर संयोग से यह हो गया है निरीह {ईहा = इच्छा = काम = कामना से दूर}। ऐसे इस शरभङ्ग को क्या माना जाए 'तम या प्रकाश' ।। २० ।।

अयमत्र महावने लताभि-
श्चपलाभिः परिरब्धमाप्य वृक्षम्।
स्वकमण्डलुवारि निर्विरामं
परिषिञ्चन्नपि वीतराग एव।। २१ ।।

शरभङ्ग इस वन में करते क्या हैं? ये जब देखते हैं कि किसी वृक्ष को चपल लताओं ने लपेट लिया है तो उस पर अपने कमण्डलु का जल प्रतिदिन छोड़ते जाते हैं, यद्यपि हैं ये वीतराग ही ।। २१ ।।

पृषतीमनु काञ्चिदुच्चशृङ्गः
पृषतो धावति चेद् वृषो वृषीं नु।
ऋषिरेष शुभाशिषां शतानि
वितरत्यत्र परन्तु वीतहासः।। २२ ।।

जब कोई हिरन किसी हिरनी की ओर शृङ्ग ऊँचा किए दौड़ता दिखाई देता है इन्हें गाय के पीछे साँड़ के समान तो ये ऐसे महर्षि हैं कि उन्हें सैकड़ों शुभ आशीष दे डालते हैं, किन्तु चेहरे पर हँसी बिना लिए।। २२ ।।

नृतिगीतिकलाभिरामगात्र्यः
शतशः शेरत एव किं न तत्र।
सुरकिन्नर - यक्ष - लीढभुक्तो-
त्स्वपनान्यत्र भवन्ति शान्तिदानि।। २३ ।।

नृत्यकला तथा संगीतकला से सुन्दर शरीरवाली सुन्दरियाँ सैकड़ों की संख्या में क्या वहाँ घूम नहीं रही हैं, यहाँ तो देवता, किन्नर और यक्षों के जो भोगों के सपने हैं वे भी शान्ति ही प्रदान करते हैं।। २३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न रसा इह सन्ति हन्त केचिद्
भरताद्यैर्गणिताः पृथक्त्वभाजः।
रस एक इहास्ति शान्तनामा
रसराजत्वकथां परां श्रयाणः।। २४ ।।

यहाँ वे रस नहीं जिनकी गणना भरत आदि मुनियों ने कर रखी है और जो अनेक और परस्पर में भिन्न हैं। यहाँ तो एक ही रस रस है जिसकी संज्ञा है 'शान्त' जो वस्तुतः सच्चे अर्थ में रसराज है {सर्वेषां रसानां शान्तप्राय एवास्वादः'-सिद्धान्त} ।। २४ ।।

रतिरस्ति न वेति नाऽत्र वार्त्ता
महिमानं लभतेतरां महान्तम्।
इह संविदधिष्ठिता चितिर्या
रसतां सैव हि याति शान्तशान्ता।। २५ ।।

'रति' {नामक स्थायी भाव} है या नहीं यह बात यहाँ अधिक महत्त्व की नहीं, यहाँ तो संवित् से अधिष्ठित परम शान्त चिति ही बनती है रस।। २५ ।।

शरभङ्गतपोवनस्य गावः
सुर-वीणारस-मापिबन्त्य एताः।
ददति द्रुतचेतसः पयांसि
स्थगितस्वर्जनता-घटोदराणि ।। २६ ।।

शरभङ्गमहर्षि के तपोवन को जो गौएँ हैं ये पान करती है 'सुर-वीणा' के रस का और पिन्हा पिन्हा कर इतना अधिक दूध दे देती हैं कि उनसे स्वर्ग की जनता के घड़ों के उदर भी भर जाते हैं।। २६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिथिलानि न सन्ति यस्य गात्रा-
ण्यधिचित्तं न हि यस्य कोऽपि शोकः।
स युवापि विलासिनीषु दृष्टिं
शरभङ्गस्तनुते नितान्तशून्याम्।। २७ ।।

जिसके अंग ढीले नहीं हैं और जिसके मन में कोई शोक नहीं, वही यह शरभङ्ग युवक होते हुए भी विलासवती बनिताओं पर दृष्टि डालता तो है, किन्तु कैसी दृष्टि? जो होती है अत्यन्त शून्य।। २७ ।।

निगमानखिलानुपास्य योगी
शरभङ्गः क्रमवर्धमान-बोधः।
सुगतान्वयसन्ततावुदारां
स्थिरतां स्निग्धतमां समादधाति।। २८।।

सभी निगमों (वेदों) का अध्ययन कर जिसने योग साधा अतः जिसका बोध उत्तरोत्तर बढ़ता गया वह शरभङ्ग बौद्धों पर उदार, स्थिर और अत्यन्त स्निग्ध भाव लिए है। {सुगत = बुद्ध, वर्धमान महावीर जैन}।। २८ ।।

क्व नु तिष्ठति चेतनामयूरी
शरभङ्गस्य न चेत् क्षितौ न वाभ्रे।
दिनमस्य कृते निशास्ति सन्ध्या-
दिनसन्धिश्च निशेति काऽत्र लीला।। २९ ।।

शरभङ्ग की चेतना है तो मयूरी, पर न पृथिवी पर बैठती और न आकाश में। तो फिर कहाँ बैठती है वह? इसके लिए रात है दिन, और सन्ध्या तथा दिन की संध्या है रात। कैसी है यह लीला? ।। २९ ।।

न मयूरविचित्रतां स पश्य-
त्यणुनाऽप्युत्सुकतालवेन दान्तः।
न च पश्यति रागतो मराला -
नपि शुभ्राम्बुजसान्निकाश्यभव्यान्।। ३० ।।

यह मयूर में वर्णों की विचित्रता को देखता तो है, किन्तु इसमें अणुप्रमाण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी उत्सुकता नहीं जागती। दान्त जो ठहरा यह। यह सफेद रंग के कमलपुष्पों के सन्निधान से रम्य मरालों पर भी रागभरी दृष्टि नहीं डालता ।। ३० ।।

यमुनासलिलं न यत्र तृप्त्यै
न च तृप्त्यै त्रिदशापगापयोऽपि।
शरभङ्गचिते! त्वदीयमाभ्य-
न्तरिकं हन्त रहस्यमस्ति गूढम्।। ३१ ।।

हे शरभङ्ग की चिति! तेरा भीतरी रहस्य कुछ और ही है जो अतिगूढ है। भला क्यों नहीं बुझती तेरी प्यास यमुना के जल से भी और गङ्गा के जल से भी ।। ३१ ।।

तरुराजिरियं समन्ततोऽस्या-
श्रमरत्नस्य विभूषिता चकास्ति।
कुसुमैः सुरभिप्रतानमुग्धैः
पिककीरावलिचुम्बितैः फलैश्च।। ३२ ।।

इसका यह आश्रम भी रत्न है। इसकी तरुराजि चमक रही है सुगन्ध फेंक रहे पुष्पों से और पिक-शुकों द्वारा चुम्बित वैसे ही (सुगन्ध फेंक रहे) फलों से।। ३२ ।।

स्रवणानि पतन्ति शैलगर्भा-
दिह भूयांसि यदुद्गतो विरावः।
शतशः खलु शक्वरीर्मुनिभ्यः
प्रतिसन्ध्यं प्रददाति मङ्गलार्द्राः।। ३३ ।।

यह वह भूमि है जहाँ पर्वतों के गर्भ से सहस्रों झरने गिर रहे हैं जिनसे उठा शब्द मुनिजनों को शत शत माङ्गलिक ऋचाएँ प्रतिसन्ध्याकाल प्रदान करता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहता है।। ३३ ।।

इह सारसपङ्क्तयो लसन्ति
प्रचले पाथसि मारुतैः स्रुतीनाम्।
अपि चक्रसमाह्वयस्य युग्मा-
न्यभितः सन्ति निशापि योगभाञ्जि।। ३४ ।।

यहाँ देखिए ये सारसपंक्तियाँ झरनों के हवा से चञ्चल जल में विचरण कर रही हैं और चक्रवाकपक्षियों के जोड़े भी चहुँओर घूमते दिखाई दे रहे हैं, रात आ जाने पर भी ये बिछुड़ते नहीं, प्रत्युत रात भी इन्हें सहयोग देती है मिलन में।। ३४ ।।

दिवसेष्वपि सङ्कटासु शाखा-
स्विह वृक्षा दधतोऽद्भुतां तमिस्राम्।
चिति काञ्चन संसुषुप्सयेद्धां
त्वरणां जागरयन्ति देहभाजाम्।। ३५ ।।

दिन में भी यहाँ वृक्ष अपनी गुँथी हुई शाखाओं के भीतर एक अद्भुत तमिस्रा को धारण किए हुए हैं और शरीरधारियों की चेतना में सोने की तीव्र शीघ्रता जगा रहे हैं ।। ३५ ।।

इह संकुचिता चितिर्वराकी
द्रढिमानं निबिडं जिघृक्षतीव।
अपि मीलयते स्वतो हि चेतः-
सखमक्षिद्वितयं विनाऽपि तन्द्राम्।। ३६ ।।

यहाँ बेचारी चेतना भी सिकुड़ गई है और घनी दृढ़ता को ग्रहण करना चाह रही है। यह विना ही नींद के चित्त से युक्त दोनों नेत्र मूँदे रहती है ।। ३६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृगयां मृगयुर्न यत्र हिंस्रां
क्षतजारञ्जित-विग्रहां तनोति।
यदि नाम तनोति तां स तर्हि
द्वयताया निबिडैक्यमापिताया:।। ३७ ।।

यहाँ कोई भी मृगयु (शिकारी) अपनी मृगया को हिंसापूर्ण और रक्तरंजित नहीं बनाता। यदि वह मृगया करती भी हैं तो केवल द्वयता की जो अत्यधिक ऐक्य को प्राप्त हो चुकी है ।। ३७ ।।

द्विदलस्य रसं हरिद्रयाऽऽक्तं
विपुलेनापि च सर्पिषा धयन्ते।
दयितै: सहिता नवप्रसूता
मृगवध्वोऽपि समं पयस्विनीभि:।। ३८ ।।

यहाँ हल्दी डली और पर्याप्त घृत से युक्त दाल हरिणियाँ अपने हिरणों के साथ पीती हैं वैसे ही जैसे नवप्रसूत गाएँ।। ३८ ।।

दधि वा पय एव वा शरं यं
परिणाहातिशयेन शोभमानम्।
परिणामयते स भङ्गमस्मिन्
भजते भूरिसितं जनाननेषु।। ३९ ।।

यहाँ दही हो या दूध या मोटी मलाई, पर्याप्त मिश्री मिलाकर उन्हें पचा लिया जाता है जिसे देख लोगों के मुखों पर अनेक भङ्गिमाएँ बनती दिखाई देती हैं ।। ३९ ।।

---

३९. शर: मलाईपदवाच्य: थरीति देशभाषायां प्रसिद्धोऽर्थ: ।
भङ्ग: कटली इति भोजपुरीशब्दोऽत्र मूलम्। द्र० ७७ पद्यमपि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इह पिच्छलतैव सर्वमार्ग-
प्रसृतात्मा स्पृहणीयतामुपैति।
स्खलनां न हि दोषमामनन्ति
प्रणयोत्थामपि तापसेषु सन्तः।। ४० ।।

यहाँ पिच्छलता ही स्पृहणीय हुआ करती है सभी मार्गों में। यहाँ प्रणय से उत्पन्न फिसलन को भी दोष नहीं माना जाता तपस्वियों में भी।। ४० ।।

यदि काङ्क्षति कोऽपि कञ्चिदात्म-
न्यतिगूढेन चरिष्णुनाऽऽत्मनाऽन्यम्।
प्रकृतिं खलु तां समामनन्ति
श्रुतिमार्गेषु चरिष्णवो महान्तः।। ४१ ।।

यदि यहाँ अपनी आत्मा के भीतर अत्यन्त गूढ़ रूप से संचार करती आत्मा से कोई किसी अन्य को चाहता है तो उसे स्वाभाविक माना जाता है उन महान् आत्माओं द्वारा जो श्रुतिमार्ग पर चलने का व्रत लिए रहते हैं ।। ४१ ।।

न हि तापसभूमयो भवन्ति
वधशालाः कृपणस्य मानुषस्य।
इह संयम एव सार्वभौमो
न तु सर्वात्मविपर्य्ययोऽनुदारः।। ४२ ।।

तापसों के धाम बेचारे मनुष्य की वधशालाएँ नहीं हुआ करतीं। यहाँ राज्य रहता है संयम का। यहाँ सब प्रकार का अनुदार विपर्यय (उलटाव) नहीं होता ।। ४२ ।।

न हि लुञ्चति कोऽपि कञ्चिदस्मिँ-
स्तपसामुत्तम आस्पदे तथापि।
सजते न हि चेतना स्थविष्ठे-
ष्वणुसंघेष्वभिदीप्रदर्शनानाम् ।। ४३ ।।

यहाँ कोई भी किसी को नोंचता नहीं। यह तो तपों के लिए उत्तम आश्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। तथापि स्थूलतम अणुसंघों में चेतना रमती नहीं, क्योंकि इनका दर्शन अत्यधिक भास्वर है ।। ४३ ।।

ममते! भवती यदि प्रथिम्ना
परमात्मावधिकीष्यते तपोभिः।
मनसोऽपि च कोऽपि तर्हि पाशः
प्रतिबन्धुं प्रभवेन्निरस्तमायम्।। ४४ ।।

ममते! यदि तपस्याओं के द्वारा तेरा विस्तार परमात्मा तक कर लेना अभीष्ट हो तो ठीक, परन्तु मन को भी बाँधने हेतु कोई सही पाश मिलना चाहिए ।। ४४ ।।

ममता शरभङ्गचित्तकोषे
निभृता चेदियमस्ति रामकाये।
स उपस्थित आनिशाम्य तं वै
मुनिरेषोऽनल आक्षिपत् स्वदेहम्।। ४५ ।।

ममते! शरभङ्ग के चित्तकोष में छिपकर भी तो तू दृष्टि लगाए थी राम के श्रीविग्रह पर ही इसीलिए जब वह (रामशरीर) आ उपस्थित हुआ तो इस महान् मुनि ने अपना शरीर यज्ञाग्नि में झोंक दिया ।। ४५ ।।

किमिदं वत दर्शनं विनापि
व्यतिरेकेण विमूर्च्छता स्थविष्ठे।
यदिदं परिकर्म सिद्धिमाप्तं
मनसोऽणावणुतां परां दुहानम्।। ४६ ।।

कौन सा है यह दर्शन जिसमें स्थविष्ठ को हटाए बिना ही यह परिकर्म (सेवाभाव) सिद्धि को प्राप्त हो गया और उसने मन के अणु को परम अणु बना दिया।। ४६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदिहोज्ज्वलहेति यायजूकै-
र्जनितं किञ्चिन लेलिहानगात्रम्।
विरजस्कमिदं समग्रभावा-
दवयन्तः शिवभावतो गृणन्ति।। ४७ ।।

यहाँ शरभङ्ग के देह की आहुति लेने हेतु याज्ञिकों ने उज्ज्वल लौ वाला जो अग्नि-पिण्ड तैयार किया था यह एकदम विरजस्क था। जिन्होंने इसे इसकी पूर्णता में समझा उन्होंने इसे शिव माना ।। ४७ ।।

ममता त्वचि वा तदावृतास्थि-
व्यतिषक्ते पललेऽथवैतदुत्थे।
समुदायमये घटेऽसृगग्नि-
पवमानैर्भरिते न यस्य काचित्।। ४८ ।।

इस शरभङ्ग की किसी में ममता नहीं। न त्वचा में, न त्वचा से ढँकी अस्थि में, न उसमें चिपके मांस में अथवा इन सबके समुदाय से बन निकले घट (देह) में, जो भरा हुआ है रक्त, अग्नि और वायु से ।। ४८ ।।

स हि कः? शृणु, सागराम्बराया
वसुमत्या विततेऽत्र पृष्ठरत्ने।
परितर्पयते विसर्जनाभिः
करणानि स्वगतानि योऽपिपासः।। ४९ ।।

वह है कौन? सुनो, वह वह है जो सागराम्बरा वसुमती के इस बहुत विशाल उत्तम पृष्ठ पर अपने करणों (इन्द्रियगण) को परितृप्त करता है विसर्जनाओं से, जिसे प्यास है ही नहीं ।। ४९ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स हि कोऽपि महामहेन्द्रवज्रे
शितिमानं परमं निधातुमीशः।
ऋषिरस्ति दधीचिनामधेयः
स्वविनाशेन सुरेषु राज्यधित्सुः।। ५०।।

वह भी है एक ऋषि जिसका नाम है दधीचि, जो समर्थ इतना कि महामहेन्द्र के वज्र में तीक्ष्णता का आधान करता, किन्तु अपने शरीर का विनाश कर राज्य देना चाहता है देवताओं को ।। ५० ।।

परमस्य कृतेऽवरस्य यद्वा
पटदेहस्य कृतेऽणुदोरकस्य।
बलिदानमिदं समाजकल्प-
द्रुममूलेऽस्ति सुधारसाऽभिषेकः।। ५१ ।।

परम के लिए अवर का या पटरूपी देह के लिए अणुरूपी धागे का जो यह बलिदान है यह है समाजरूपी कल्पवृक्ष की जड़ में सुधारस का सेक।। ५१ ।।

तपसा यदिवाऽनुशासनेन
स्वयमेवाधिकृतेन मानुषेण।
वियति क्षितिसङ्गते कियन्ति
मधुराण्यारचितानि चित्रकाणि।। ५२ ।।

और भी कितने ही मधुर चित्र मनुष्य ने बनाएँ हैं क्षितिज पर, तप से या स्वरचित अनुशासन से ।। ५२ ।।

अयि विश्वजनीन-भाव-दीक्षा-
गुरुराजाऽद्यतनाणुयोगभोग?
भवते किमु चित्रकाण्यमूनि
न हि रोचन्त उदित्वराणि गूढम्।। ५३ ।।

हे अद्यतन! हे अणुयोग का भोग! विश्व के हित की दीक्षा देने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोत्कृष्ट गुरु! क्या तुझे ये चित्र भाए नहीं, ये तो छिपे-छिपे होते हैं उदित ।। ५३ ।।

नयनं हि तृतीयमेव तत्र
प्रभुभावेन समिन्धतेऽणुशक्ते?
तदिदं द्रुतमर्जितुं समीहा
क्व जडे क्वापि कदापि संभवित्री।। ५४ ।।

हे अणुशक्ते! वहाँ धधक रहा है प्रभु के रूप में {शिव का} तृतीय {अग्निमय} नेत्र। इसे शीघ्र अर्जित करने की समीहा कहाँ है बतला। वह क्या किसी जड़ में कहीं भी कभी भी संभव है? ।। ५४ ।।

निखिलैर्विभवैः परं प्रकाशं
परमां शक्तिमथोऽयमादधानः।
शरभङ्गमहर्षिमिन्द्र आस्था-
मसृणोऽस्यां ह्युपतिष्ठते धरित्र्याम्।। ५५ ।।

देखो यहाँ इस पृथिवी पर क्या घट रहा है। देखो यहाँ देवराज इन्द्र परम आस्था के साथ उपस्थित है महर्षि शरभङ्ग के पास। वह अपने साथ लिए हुए है अपने सभी प्रकार के वैभवों से उत्पन्न पर प्रकाश और परम शक्ति ।। ५५ ।।

स निनीषति तं विधेर्नियोगाद्
विधिलोकं ननु यत्र कापि सत्ता।
लभते न हि कोटिमन्तिमाख्यां
न च भूमानमृतेऽस्ति यत्र कायः।। ५६ ।।

विधाता के आदेश से वह देवराज इसे शरभङ्ग को विधाता के लोक में ले जाना चाहता है जहाँ कोई भी सत्ता अपनी अन्तिम कोटि (छोर) तक नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँच पाती और जहाँ भूमाभाव के बिना शरीर नहीं ।। ५७ ।।

रजसां परितो विराजमाना
विरजस्का: खलु कोऽपि ये द्युलोका:।
नहि शास्ति महेन्द्र एष तान् वै
कुलिशक्लेश इमान् न संस्तवीति।। ५७ ।।

इन सभी राजस क्षेत्रों के चारों ओर विराजमान जो रजोविहीन दिव्य द्युलोक हैं इन पर शासन यह महेन्द्र नहीं करता। इन्हें वज्र के क्लेश का परिचय ही नहीं ।। ५७ ।।

गुण - शर्करयाऽधिविश्ववारि
द्वयतारेचितया ह्यमी पिपीला:।
सकला अपि हन्त पाशितान्त: -
करणा धावितुमुत्सुका दिपन्ति।। ५८ ।।

यह विश्व जल है, इसमें मिश्रित है {सत्त्व, रजस्, तमस् इन} तीनों गुणों की द्वयतारहित शर्करा (चीनी)। इससे इन सभी चीटों के चित्त पाशित हैं और दिखाई दे रहे हैं उधर ही दौड़ लगाते।। ५८ ।।

तदिदं ननु पानकं विसृज्य
मणिपात्रे भरितं स्वत: शरीरी।
क्व नु दृग्दयितायुतोऽभियोगं
विदधान: शरभङ्गके विभाति।। ५९ ।।

मणिपात्र में भरे इस उत्तम पानक रस को अपने आप छोड़कर यह शरीरी {आत्मा} शरभङ्ग में अवस्थित है अपनी प्रिया दृक् के साथ। यह कहाँ जाना चाहता है? ।। ५९ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविरेष स कोऽपि, तस्य कण्ठा-
दुदगात् काचन शारदा दयार्द्रा।
प्रणतः प्रति तं हि कोऽपि गुप्तोऽ-
भिनवो लोचनमात्मनो नियोज्य।। ६० ।।

यह भी कोई कवि ही है, जिसके कण्ठ से निकली थी कोई दयार्द्र शारदा। उसी के प्रति प्रणत हुआ था वह कोई गुप्त अभिनव भी अपना लोचन लगाकर ।। ६० ।।

विमृशत्ययमन्तस्त्वेव संविद्-
दयिताकामुकमात्मनः प्रकाशम्।
न हि तत्र तमांसि विश्वभाञ्जि
द्रुतिमीषत्त्वमितामपि श्रयन्ते।। ६१ ।।

अपने भीतर ही यह विमर्श करता है आत्मा के प्रकाश का जो {प्रकाश} है संवित्तिरूपी प्रेमिका का प्रिय। उसमें विश्व के सभी तमस् तनिक सी भी द्रुति को प्राप्त नहीं कर पाते ।। ६१ ।।

अयमस्ति कथानकस्य गाता
द्वयता - तीर-युगान्तरान्ववायी।
न शिवा न शिवश्च यत्र योगं
न वियोगं च परस्परस्य धत्ते।। ६२ ।।

यह है द्वयता {नदी} के दो तीरों से संबन्धित और उस कथानक का गाता जिसमें न शिवा और न शिव के बीच एक दूसरे का योग रहता, न वियोग ही।। ६२ ।।

इयमस्ति विपञ्चिकाऽस्य पाणा-
वनयाऽऽमन्त्रयते स गुप्तमीशम्।
अभिनूतनतां परां श्रयाणं
विजरं प्रत्नमथो सनातनञ्च।। ६३ ।।

इसके हाथ में है यह वीणा। इससे ये उस गुप्त ईश का आवाहन करते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो सदा अभिनवता धारण किए रहता है, जो कभी जराजीर्ण नहीं होता, न पुराना, जो सनातन है ।। ६३ ।।

न नरो न च योषिदेव यस्मै
तनुते विस्मयमुत्स्मयान्तरीक्षे।
शरपञ्चकमस्य कामनाम्नः
प्रियदासस्य न यत्र लब्धमार्गम्।। ६४ ।।

जिसकी आन्तरिक दृष्टि स्मय से दूर है अतः इसे न विस्मय होता नर से और न नारी से। इसका प्यारा सेवक है काम। उसके पाँचों बाण इसमें स्थान नहीं पाते ।। ६४ ।।

शरभङ्ग इति प्रथा समेषा-
मपि भूमाविह योगिनां य एते।
प्रविशन्ति यदा कदा न, वह्ने-
र्बहिरायान्ति न ये कदापि दिव्यात्।। ६५।।

इस पृथिवी पर जितने भी योगी हैं उन सबका नाम है 'शरभङ्ग'। ये लोग दिव्य अग्नि में जब तब प्रवेश नहीं करते, ये तो उस दिव्य अग्नि से बाहर कभी भी आते ही नहीं ।। ६५ ।।

इत उत्थित एष पाद उच्चै-
रवनेरूर्ध्वमसौ स्थिरः प्रतीच्छन्।
क्रमणाय भुवं स्थिरां तमेतं
शरभङ्गो वृणुतेऽग्निषु प्रविष्टः।। ६६ ।।

अग्नि में प्रविष्ट यह शरभङ्ग वरण करता है उस चरण को जो स्थिर पृथिवी को नॉपने के लिए स्थिर है और जिसकी ओर दृष्टि लगाए हुए है वह चरण जो पृथिवी से उठकर इस पृथ्वी के ऊपरी भाग में जा जमा है ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६६ ॥

न हि तत्र कलास्ति कालनाम्नः
प्रतिभासैक-कलेवरस्य धातुः।
न च काचन पञ्चभूतमाया
दिशि देशत्वमिताऽस्मितामवाप्ता॥ ६७ ॥

वहाँ अस्मिता को प्राप्त न तो है 'काल'-नामक विधाता की कोई कला जो (काल) कुल मिलाकर एक प्रतिभास है, और न पञ्चभूत की देशनामक माया ही ॥ ६७ ॥

अयि कीदृश एषकोऽग्निरस्मिन्
स्वयमेवाग्निरसौ समिद्धगात्रः।
न हि कालति काल एव तस्मिन्
न च देशोऽपि च देशति प्रकाशे॥ ६८॥

अरे यह कैसा अग्नि जिसमें स्वयं अग्नि (शरभङ्ग) भस्म हो रहा भकभकाकर, जहाँ काल भी काल नहीं रह जाता और न देश ही देश। स्वयं तो यह अग्नि स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है ॥ ६८ ॥

मृगयुर्मृगवागुरा मृगाणा-
मभिकान्तारमुपद्रुतोऽन्ववायः ।
किमु नास्ति तपस्विनः पदेऽस्मिन्
मृगया किन्तु पदं न तत्र धत्ते ॥ ६९ ॥

तपस्वियों के इस क्षेत्र में 'मृगयु, जाल, जंगल की ओर दौड़ा मृगसमुदाय' इनमें से क्या नहीं है, किन्तु यहाँ मृगया पैर नहीं रखती॥ ६९ ॥

---

६९. मृगयामात्रमपास्य शान्तदान्ते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकन्धरबन्धमेष शेषः
शिवगात्रस्य विराजते ततश्च।
तत एव च यत्र चन्द्रलेखा
स्थितिमाप्ता सुरदीर्घिकेव सौम्या।। ७० ।।

शिव के शरीर में, देखिए, यह शेष गले में लिपटा हुआ है और वहीं है अवस्थित सौम्य चन्द्रलेखा गङ्गासी, जो वहीं से निकली हैं ।। ७० ।।

इह जन्मनि वीतपूर्वजन्मा
क इवान्वेति, स कीदृशोऽस्ति, रागी
यदि वा गतराग उत्तरं किं,
किमिदं नो 'स हि शान्तिमान् कषायी'।। ७१ ।।

इस जन्म में पूर्वजन्म वितावकर कौन है जो आता है? कैसा है वह? क्या रागी है या विरागी है वह। इसका उत्तर क्या? क्या यह नहीं कि वह 'शान्ति से युक्त कषायी' है। {कषाय के कारण ही होता है नया जन्म} ।। ७१ ।।

शरभङ्गतपस्विनः कषाया
अखिला अग्निषु साम्प्रतं ज्वलन्ति।
प्रशमः परमस्य कोऽपि पद्मा-
कर एष, स्वयमेव यत्र पद्मम्।। ७२ ।।

देखिए यह जो शरभङ्गनामक एक तपस्वी है। इस समय इसके सभी कषाय उन उन अग्नियों में जल रहे हैं। किन्तु इसमें है अवस्थित प्रशम, जो है एक पद्माकर जिसमें स्वयं यही है पद्म ।। ७२ ।।

ज्वलनादुदिता इमा अपो याः
सरसी काचन काञ्चनी दधाति।
शरभङ्ग इहैव भृङ्गराजः
स्वदतेऽत्रैव स पुण्डरीककोषम्।। ७३।।

कोई एक जो यह काञ्चनी सरसी है यह अग्नि से उत्पन्न इन जलों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारण किए हुए है। शरभङ्ग इसी में बने रहते हैं भृङ्गराज और यहीं वे आस्वादन करते हैं पुण्डरीक-कोष का ।। ७३ ।।

मधु तत्र परागपिञ्जरं य-
न्निभृतं तिष्ठति, सागरं तमेव
कुरुते स हि पुण्डरीकनेत्रः
कमलापाणियुगेन वाहिताङ्घ्रिः।। ७४ ।।

पराग से पीला जो मधु उसमें है, उसी को सागर बनाते हैं भगवान् पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) जिनके चरण दबाते रहते हैं कमला (लक्ष्मी) के दोनों करकमल ।। ७४ ।।

शरभङ्गमुनेर्दृगत्र नित्यं
प्रतिबोधं दधती, न वै निमीलाम्
स्पृशति क्वचिदप्यणुप्रमाणे-
ऽप्यतिमात्रं चपले क्षणस्य गात्रे।। ७५ ।।

शरभङ्गमुनि की दृष्टि यहीं नित्य जागरूक रहती है, कभी भी नहीं छूती वह निद्रा को, एक क्षण के भी अत्यन्त छोटे अणु में भी ।। ७५ ।।

इह यो ज्वलनां तनोति दीप्रां
न हि दीपस्य शिखाऽस्य कज्जलाक्ता।
स्फुरणा न हि तत्र कापि कालाऽ-
नलनिश्वाससमीरिता वराकी।। ७६ ।।

इस आश्रम में जो प्रकाशयुक्त प्रज्वलन को जन्म देता है (प्रकाश बिखेरता और जलता रहता है) उस दीप की शिखा कज्जल से युक्त नहीं हुआ करती, न होती उसमें कालानल की साँस से जनित स्फुरण (फुरफराहट) ।। ७६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निगमागमदुग्धसिन्धुजन्मा
न शरस्तत्र न भुज्यते महद्भिः।
स्वयमेव पराम्बिकाऽत्र धत्ते
मधुधाराधरतां पिशङ्गगात्रीम्।। ७७ ।।

इस आश्रम में जो महापुरुष हैं वे निगमागमरूपी क्षीरसागर से निष्पन्न मलाई (शर, थर, थरी) का भोग नहीं करते ऐसा नहीं। इस भोग में पिशङ्गवर्ण की मधु (शहद) धारा का मेघ स्वयं पराम्बा बन जाया करती है ।। ७७ ।।

शरभं खलु कञ्चिदष्टपादं
निखिलस्याऽस्य चराचरस्य बिम्बम्।
गमयत्यखिलं विभूतियोगं
जगदम्बा शरभङ्ग एष भावः।। ७८ ।।

'शरभङ्ग' (शब्दों) में भाव यह है कि इस संपूर्ण चराचर के बिम्ब किसी 'अष्टपाद' शरभ को समस्त विभूतियोगों से स्वयं जगदम्बा मण्डित करती रहती है'। {शरभं गमयति}।। ७८ ।।

ज्वलनः स सदैव संप्रबुद्धः
स्वयमेवास्ति शिवस्तदङ्कशायी।
पृथुकः शरभङ्ग एष नूनं
शरजन्मा च षडाननश्च साक्षात्।।७९ ।।

वह (शरभ) तो सदैव जलता रहने वाला ज्वलन है। शिव उसकी गोद में स्वयं ही सदैव सोते रहते हैं। शरभङ्ग है उसका नन्हा सा बालक। निश्चित ही वह साक्षात् शरजन्मा और षडानन (कुमार, स्वामी, कार्त्तिकेय) है।। ७९ ।।

---

७७. शरः ३९पद्यटिप्पणौ विवृतः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणेतुमसौ हि देवसेनां
क्रमते क्रान्तदृशां गुरुः समेषाम्।
परिणीय च तां तयैव सर्वा-
नसुरान् नाशयते स तारकाख्यान् ॥ ८० ॥

सभी क्रान्तदार्शियों का है वह गुरु। वह स्वयं आगे बढ़ता है देवसेना का पाणिग्रहण करने हेतु। उसके साथ परिणय कर उसी से वहीं करवाता है तारकासुरसमेत सभी असुरों को नष्ट॥ ८० ॥

शरभङ्गमुनिर्निलीय तिष्ठ-
त्यधिरामं ननु पृच्छया प्रदीप्तः।
अयि सूर्पणखे! न निर्मिमीषे
किमु रामं त्वमसौ स्वयं हि रम्यम्॥ ८१॥

शरभङ्गमुनि हैं तो विलीन राम में परन्तु उनमें एक पृच्छा प्रदीप्त है {वि पूछना चाहते हैं}। हे सूर्पणखे! तू खुद एक रम्य राम को क्यों नहीं बना लेती? ॥ ८१ ॥

त्वयि संप्रभुता परा चकास्ति
प्रसवे रूपशतस्य चेद् ब्रुवीथाः।
खर-दूषण-रावण-स्वसस्? त्वं
परतन्त्राऽसि कथं नु रामलाभे॥ ८२ ॥

तुझमें तो ऐसी शक्ति है कि सैकड़ों रूप बना सकती है। तो बोल कि खर, दूषण और रावण जैसे मायावी भाइयों की बहिन होने पर भी तू राम को पाने में इतनी परतन्त्र क्यों है? ॥ ८२ ॥

कथमिच्छसि राममात्रनिष्ठं
निखिलाप्यायन-रामणीयकं त्वम्।
अयि मायिकवल्लभे! क्व याता
तव माया तव शक्तिरत्र कार्ये॥ ८३ ॥

अपने संपूर्ण आप्यायन की शक्ति से पूर्ण रमणीयता तू केवल राम में ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों चाहती है। तू तो ठहरी मायिक पति की प्रिया और मायिक कार्यों की शौकीन। कहाँ गई तेरी माया और तेरी शक्ति (राम के निर्माण रूपी) इस कार्य में? ।। ८३ ।।

शरभङ्ग – सुतीक्ष्ण – कुम्भजानां
तपसा कीलितमाश्रमं विविक्षुः।
वटपञ्चकधाम्नि रामजायां
प्रसभं त्वं किमु वर्त्तते बुभुक्षुः।। ८४ ।।

तू चाहती तो है प्रविष्ट होना शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य जैसे तपस्वियों के तप से कीलित आश्रम में, परन्तु उधर पञ्चवटी में क्यों चाहा था तूने राम की पत्नी को जबरन खा जाना? ।। ८४ ।।

स्वयमेव विधाय राममेकं
स्वयमेव प्रतिपद्य जानकीत्वम्।
तनुषे न कथं विवाहदीक्षा-
मनयोः क्रीडनवल्लभेऽसुरस्त्रीः।। ८५ ।।

तू स्वयं बना ले एक राम और स्वयं बन जा जानकी। और रच डाल दोनों की विवाहदीक्षा! तू तो असुरयोनि की स्त्री है और क्रीड़ा तुझे प्रिय है ।। ८५ ।।

अयि ते परतन्त्रचेतनायाः
परपत्न्याः परपूरुषेण सक्तिम्।
शरभङ्गमुनिः समीक्षतेऽद्धा
दहनं किञ्च विशत्युदारदृष्टिः।। ८६ ।।

अयि सूर्पणखे! तेरी चेतना है परतन्त्र क्योंकि तू किसी और की स्त्री है और चाह रही है और को। यह जो तेरी स्थिति है इसे शरभङ्गमुनि ठीक से ऑक रहे हैं और {कदाचित् इसीलिए} अग्नि में कूदना चाह रहे हैं। उनकी दृष्टि बड़ी उदार है ।। ८६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिहृत्य तवाभिषङ्गवेला-
मसकौ यज्ञकृशानुसंन्निविष्टः।
अयि सूर्पणखे! नखस्य राशौ
तव कुण्ठत्वमुदीक्ष्य जर्हषीति।। ८७ ।।

तू इन पर चढ़ाई करे इसके पहले ही ये शरभङ्गमहर्षि यज्ञाग्नि में प्रविष्ट हो गए हैं और खूब प्रसन्न हो रहे हैं तेरे सभी नखों को कुण्ठित देख ।। ८७ ।।

प्रकृतिस्त्विय मंस्ति मानुषी यत्
प्रतिभासादपरज्यतीयमार्या ।
परमार्थमुपास्य वस्तु तद्वत्
परितोषं व्रजति, च्छलं क्व रस्यम्।।८८ ।।

अरे यह तो मनुष्य का स्वभाव ही है कि इस आर्या को प्रतिभास से घृणा है। उसी प्रकार इसे परितोष होता है परमार्थ से। भला छल में रस कहाँ? ।। ८८ ।।

शरभङ्ग इहास्ति तत्त्वदर्शी
यदि चेत् सूर्पणखाप्यतत्त्वदृङ्नो।
उभयोरभिरामताऽभियोगो -
प्यसमानौ न विसीयते यदीशः।। ८९ ।।

इस दर्शन में यदि शरभङ्ग तत्त्वदर्शी हैं तो सूर्पणखा भी अतत्त्वदर्शिनी नहीं है। इन दोनों की अभिराम राम की ओर जो गहन प्रवृत्ति है वह भी एक सी है, क्योंकि दोनों का विषय एक ही है राम ।। ८९ ।।

करणानि पराञ्चि तत्र गर्धा
करिणो नास्त्यधिका पिपीलकेभ्यः।
परता परमार्थता च साध्व्यौ
जगति प्रीतिपरिष्कृते स्वसारौ।। ९० ।।

इन्द्रियाँ तो बहिर्मुखी हैं। इनमें जो गर्धा (गहन इच्छा) है वह हाथी की और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चीटे की बराबर ही है, चीटे की कम और हाथी की अधिक हो ऐसा नहीं है। 'परता' (उत्कृष्टता) और परमार्थता संसार में एक दूसरे से प्रीति करती दो बहिनें हैं ।। ९१ ।।

अहमेव न भवान् भवानिवाहं
मतिरेषा ननु दर्शनस्य माया।
व्यवहारपटे तु चित्र्यमाणे
भवतो मे परतैव तत्त्वसिद्धा।। ९१ ।।

'मैं ही हूँ आप जैसे आप हैं मैं' यह जो बुद्धि है यह तो दर्शन की माया है। जब चित्रित किया जाने लगता है व्यवहाररूपी पट तब तो आपसे मेरी भिन्नता ही तात्त्विक ठहरती है ।। ९१ ।।

शरभङ्ग इहास्ति तत्र जाया
ननु कस्यापि परस्य सूर्पतुल्या।
अनयोरुभयोस्तु मर्ध्यवर्त्ती
विषयः कश्चन यः स राम एव।। ९२ ।।

इस ओर खड़े हैं महर्षि शरभङ्ग और उस ओर है कोई परस्त्री सूर्प जैसी। इन दोनों के बीच जो कोई विषय (अभीष्ट वस्तु) है वह तो राम ही हैं ।। ९२ ।।

गतिरप्यनयोर्द्वयोः समाना
न पुनर्जन्म फलं तयोर्यदेकम्।
तरणिस्त्वनयोश्छलाछलाभ्यां
ग्रथितात्मेति विमृश्यते प्रवेकैः।। ९३ ।।

इन दोनों की गति भी होगी समान, क्योंकि दोनों को जो अपुनर्भव (मुक्ति) प्राप्त होगा उस फल में भी एकता रहेगी। इनकी नौकाएँ अवश्य भिन्न हैं एक की नौका छल से निर्मित और एक की वास्तविकता से, जैसा कि चतुरजन समझते हैं ।। ९३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कियती नु विडम्बना विमर्श!
त्वयि जागर्त्तितरां तव प्रपञ्चे।
द्वयतामपहस्तयत्सु नौकां
द्वयतामात्रमिदं हि केवलं यत्।। ९४ ।।

हे विमर्श! तेरे भीतर कितनी बड़ी है यह विडम्बना कि तेरे प्रपञ्च में जो द्वयता को हटाना चाह रहे हैं उनके लिए एकमात्र द्वयता ही बनती है नौका ।। ९४ ।।

अपरज्यति कुत्र कः, सरागः
क्व च कोऽस्मिन् द्वयतामये कटाहे।
सततं परिकृष्यमाणकुक्षा-
वपकर्षोऽप्युपसर्ग एव नान्यः।। ९५ ।।

कौन किससे घृणा करता और किससे कौन प्रेम इस द्वयतामय कटाह में अपकर्ष भी केवल उपसर्ग है अन्य कुछ नहीं, क्योंकि इस कटाह की कुक्षि निरन्तर घिसती ही रहती है ।। ९५ ।।

भवनं वृतिरत्र रक्षणार्थं
भृतकस्तस्य कृते गृहं वृतिश्च।
अहहा तदिदं महद् रथाङ्गं
शरभङ्गस्य दृशि स्फुटं चकास्ति।। ९६ ।।

'भवन, उसका घेरा, उसकी रक्षा के लिए सेवक, उसके लिए घर और उसका भी घेरा'। ओ हो हो। कितना बड़ा है यह चक्र। यह शरभङ्ग की दृष्टि में स्पष्ट है ।। ९६ ।।

परिवृत्तिरियं समाऽसमा वा
तरला वा परुषाऽपि वा न भेदः।
भिषजां विषमप्युपास्यमेवा-
मृततुल्यं प्रतिसंस्कृताङ्गकं चेत्।। ९७ ।।

यह तो लेनदेन है। चाहे यह सम हो चाहे असम, चाहे तरल हो चाहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठोर। कोई फरक नहीं। वैद्यों के लिए विष भी उपादेय और उपयोगी होता है, अमृत के ही समान यदि वह शोधा जा चुका हो ।। ९८ ।।

कुसुमं कुलिशं च यस्य हेतोः
पृथगेषा प्रकृतिस्त्वगेव लोके।
त्वचि चर्मणि वल्कलेऽथ कृत्ता-
वजिने पश्यति कश्चिदेव भेदम्।। ९८ ।।

कुसुम ओर कुलिश जिसके कारण अलग अलग होते हैं यह है प्रकृति। परन्तु यह तो केवल त्वचा है। त्वक्, चर्म, वल्कल, कृत्ति और अजिन में भेद कोई कोई ही देख पाता है ।। ९८ ।।

श्वसनाः प्रसरन्ति सार्यमाणाः
गगने येन स हि प्रवृत्तियागः।
न हि तत्र हवींषि नो भवामः
प्रतिसीरां पृथुलां तु धारयामः।। ९९ ।।

आकाश में जो ये पवन फैलाए जा रहे हैं और फैल रहे हैं इसका कारण है प्रवृत्तियाग। इस याग में हविष्य हम भी न बन रहे हों ऐसा नहीं, मोटी तिरस्करिणी भर हमने धारण कर रखी है ।। ९९ ।।

गिरिसर्षपयोर्निकायवर्त्ति -
र्न्यूणिमन्यस्ति न कोऽपि चेद् विभेदः।
महिमन्यपि तर्हि तर्कसिद्धो
न विभेदो, ननु तावुभौ हि भावौ।। १००।।

गिरि और सर्षप के शरीरों में जो अणु हैं यदि उनमें कोई भेद नहीं तो उनकी पृथुता में भी कोई भेद तर्कसिद्ध नहीं होगा। क्योंकि, वे (पर्वत और सर्षप) दोनों ही हैं तो भाव ही ।। १०० ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भविनां नहि भावमात्रजन्यां
भिदमेते स्थिरयन्ति बुद्धिमन्तः।
इह भाविनि भावकश्मलायां
चिति वास्यां परिमाणमभ्रपुष्पम्॥ १०१॥

संसार में उत्पन्न अतएव भवी जनों में भावमात्र से उत्पन्न भिन्नता को बुद्धिमान् लोग भिन्नता नहीं मानते। यहाँ जो भाव से युक्त है और जो भाव से कश्मल चेतना है उनमें परिमाण तो है ही कहाँ, वह तो आकाशपुष्प भर है ॥ १०१ ॥

शरभङ्गमहर्षये प्रणामाः
स हि देहेन समाचितोऽस्ति देही।
परितर्पयते य एष वह्निं
हविषाऽप्यात्मशरीर-विग्रहेण ॥ १०२॥

महर्षि शरभङ्ग को अनेकानेक प्रणाम। वे देही तो हैं पर देह से युक्त, जो वह्नि को परितृप्त करते हैं अपने शरीर की हवि देकर ॥ १०२ ॥

शरभङ्गमहर्षिवासभूमिः,
सुतनोर्गीतिभिराहृतान्तरङ्गा ।
अचरं च चरं च विश्वमेतद्
विलयं प्रापयते मधुन्यपूर्वे॥ १०३॥

शरभङ्ग महर्षि जहाँ रहते हैं उसका हृदय सुतनुका नामक रङ्गनर्त्तकी की मधुर गीतियों से एकाग्र है। यह विश्व चर हो या अचर परन्तु विलय को अवश्य ही प्राप्त होता है किसी अपूर्व मधु में॥ १०३ ॥

इयमेव पुराणनाट्यशाला-
वसतिः कञ्चन रूपदक्षमाहृत्।
नटराजपुरीं य एष बद्धः
सुतनोः प्रीतिभिरस्मरन्न यस्याम्॥ १०४॥

यहीं है वह पुरानी नाट्यशाला जिसमें वास करती है यह सुतनुका। इसी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुलाया था किसी रूपदक्ष को। यहाँ आकर इस रूपदक्ष ने सुतनुका की प्रीति में बँधकर नटराज (बाबा विश्वनाथ) की पुरी (काशी) को भुला दिया था ।। १०४ ।।

ध्वननं दिशि मूर्च्छनाभिरिद्धं
वसतिः सेयमुदारतारमाप्ता।
श्रुतिषु श्रुतिभिः सुधाग्रजाभिः
सततं हन्त निवेक्ष्यशीति कामम्।। १०५।।

मूर्च्छनाओं से प्रदीप्त, उदार और तार ध्वनियों से युक्त यह वसति कानों में काम को बरबस ठूँस देती है सुधा की अग्रजा श्रुतियों के द्वारा ।। १०५ ।।

क्रमणां करणानि बाह्यवृत्ती-
न्यनुसन्धाय चितिं सनृत्तगीतिम्।
इह पञ्चशराज्यमान्तरेऽग्नौ
प्रदिशन्त्यादधते विराममूर्त्तिम्।। १०६।।

इन्द्रियाँ हैं बर्हिमुखी। ये नृत्त और गीति से युक्त चिति का अनुसन्धान कर आन्तरिक अग्नि में कामरूपी घृत की आहुति देती हुई इस प्रकार चलती हैं कि उसका पर्यवसान होता है विराम में ।। १०६ ।।

शरभङ्ग! महर्षितावधूटी
त्वयि धत्ते चरितार्थतां वरिष्ठाम्।
श्रयसे दृशि भौतिकं सजानिं
परमात्मानमसौ स एष रामम्।। १०७।।

हे शरभङ्ग! महर्षितारूपी वधूटी तुम्हारे भीतर ही सर्वोत्कृष्ट चरितार्थता को धारण करती है जो आँखों में लिए रहते हैं भौतिक परमात्मा और उनकी पत्नी को, जिनका शुभ नाम है 'राम' ।। १०७ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गिरिरेव स रामशब्दपूर्वो
बहुभूमिः खलु यद् विमानराजः।
अपरो जनको विदेहराजः
शरभङ्गोऽस्ति भवान् कलानदीष्णः।।
नमो नमो नः।। १०८ ।।

भगवन् शरभङ्ग! आप हैं कलाओं में निष्णात। आप ही हैं रामगिरि, आप ही हैं अनेक मंजिलों वाला विमानराज और आप ही हैं विदेहराज जनक। आपको हमारे अनेकानेक नमस्कार ।। १०८ ।।

इति महामहोपाध्यायस्य प्राप्तश्रीवाण्यलङ्करणस्य सनातनकवेः काश्यपस्य द्विवेदिनो रेवाप्रसादस्य कृतिः शरभङ्गकाव्यं पर्यपूरि।।

इस प्रकार पूर्ण हुआ शरभङ्ग—नामक काव्य जिसके रचयिता हैं महामहोपाध्याय 'श्रीवाणी अलङ्करण' से विभूषित सनातनकवि काश्यप द्विवेदी रेवाप्रसाद।

इस प्रकार पूरा हुआ डॉ० सदाशिवकुमार द्विवेदी का 'शरभङ्गकाव्य' का हिन्दी अनुवाद।

१२.११.२०००

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरभङ्गे

श्लोकानुक्रमणिका.

अधिकन्ध	७०	इह यो ज्व	७६	तडाजि	३२
अपरज्य	९५	इह संकु	३६	त्वयि संप्र	८२
अयमत्र	२१	इह सा	९	दधि वा	३९
अयमस्ति	२,६२	इह सार	३४	दिवसेष्व	३५
अयमिच्छ	३	कथमिच्छे	८३	द्विदलस्य	३८
अयि कीदृ	६८	करणानि	९०	ध्वननं दि	१०५
अयि ते प	८६	कविरेष	६०	न नरो न	६४
अयि दण्ड	१	किमिदं व	४६	न मयूरवि	३०
अयि विश्व	५३	कियती नु	९४	नयनं हि	५४
अरसा ज	१३	कुसुमं कु	९८	न रसा इ	२४
अहमेव	९१	क्रमणां क	१०६	न हि काच	१९
अहहा त	१८	क्वचिदत्र	१५	न हि तत्र	६७
इत उत्थि	६६	क्व नु तिष्ठ	२९	न हि ताप	४२
इत एव	१६	गतिरप्य	९३	न हि यत्र	१०
इदमेक	२०	गिरिरेव	१०८	न हि लुञ्च	४३
इदमेव	७	गिरिसर्प	१००	निखिलैर्वि	९५
इयमस्ति	६३	गुणशर्क	५८	निगमागम	७७
इयमेव	१०४	ज्वलनः स	७९	निगमान	२८
इह किं	८	ज्वलनादु	७३	नृतिगीति	२३
इह कुत्र	१४	तदिदं न	५९	परमस्य	५१
इह जन्म	७१	तपसा य	५२	परिणेतु	८०
इह पिच्छ	४०	तपसामि	१२	परिवृत्ति	९७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिहृत्य	८७	रमुनास	३१	शरभङ्गमहर्ष	१०२
पृषतीम	२२	रजसां प	५७	शरभङ्ग-	
प्रकृतिस्त्वि	८८	रतिरस्ति	२५	महर्षिता	१०७
भवनं वृ	९१	विभवस्य	११	शरभङ्ग-	
भविनां न	१०१	विमृश्यैत्य	६१	महर्षिवास	१०३
भृगुता त्वि	५	शरभं स्व	७८	शरभङ्गमुनिर्नि	८१
भृगवोऽत्र	६	शरभङ्ग		शरभङ्गमुनेर्दृ	७५
भृगवो म	४	इति प्रथा	६५	शरभङ्ग-	
मधु तत्र	७४	शरभङ्ग		सुतीक्ष्ण	८४
ममता त्व	४८	इहास्ति तत्र	९२	शिथिलानि	२७
ममता श	४५	शरभङ्ग		श्वसना: प्र	९९
ममते भ	४४	इहास्ति तत्त्व	८९	स निनीष	५६
मृगयां मृ	३७	शरभङ्ग		स हि क:	४९
मृगयुर्मृ	६९	तपस्विन:	७२	स हि कोऽपि	५०
यदि काङ्क्ष	४१	शरभङ्ग		स्रवणानि	३३
यदिहोज्ज्व	४७	तपो वनस्य	२६	स्वयमेव	८५
				हरये व	१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion b

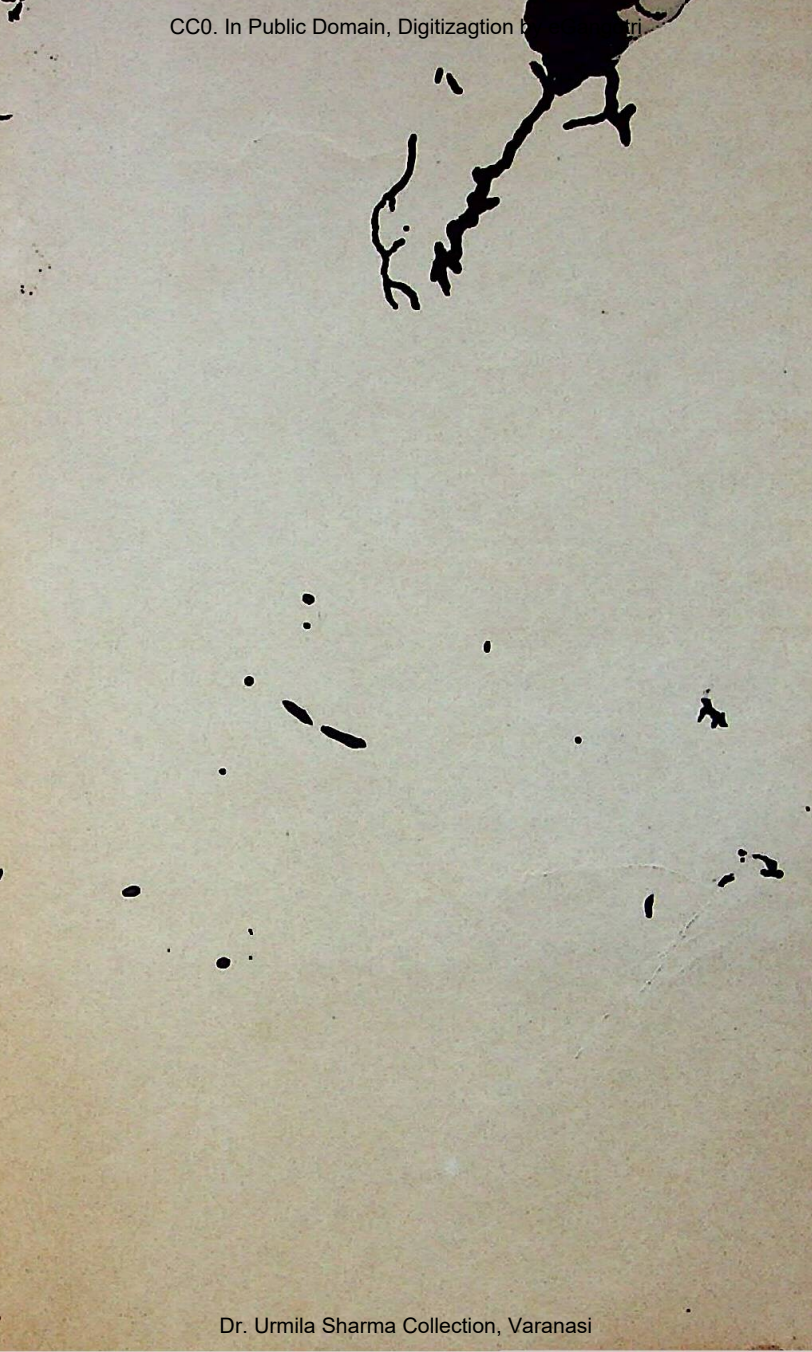

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi